बुद्धवर्ष २५४४, पौष पूर्णिमा, ९ जनवरी, २००१ वर्ष ३० अंक ७

धम्मवाणी

अट्ठङ्गिको अरियपथो जनानं, मोक्खप्पवेसो उजुकोव मग्गो।
धम्मो अयं सन्तिकरो पणीतो, निय्यानिको तं पणमामि धम्मं॥

वंदना- ५

यह जो आर्य-जनों के उपयुक्त अष्टांगिक मार्ग है, यह जो मोक्ष-प्राप्ति के लिये सीधा सरल मार्ग है, यह जो शांतिदायक उत्तम धर्म है और यह जो निर्वाण की ओर ले जाने वाला है - मैं ऐसे धर्म को प्रणाम करता हूं।

विश्वशांति के लिए आंतरिक शांति आवश्यक

(सहस्राब्दि विश्वशांति शिखर-सम्मेलन में पूज्य गुरुदेव श्री गोयन्काजी का प्रवचन)

अगस्त २००० के अंत में पूज्य गुरुदेव ने उपरोक्त शिखर सम्मेलन में भाग लिया, जिसमें विश्व के १००० से अधिक धार्मिक और आध्यात्मिक नेता यू. एन. ओ. के प्रधान सचिव श्री कोफी अन्नान की अध्यक्षता में एकत्र हुए थे। इस सम्मेलन का लक्ष्य सहिष्णुता बढ़ाना, विश्वशांति को प्रोत्साहन (पोषण, विकास) देना और विभिन्न सांप्रदायिक नेताओं द्वारा सौहार्द्रपूर्ण वातावरण में आपसी वार्तालाप को बढ़ावा देना था। लेकिन विभिन्न नेताओं के दृष्टिकोण भिन्न होने के कारण मत-भेद उभरने की ही संभावना प्रबल थी। ऐसे में पूज्य गुरुदेव ने अपने प्रस्तुतीकरण में इस बात पर जोर दिया कि जो बातें सभी आध्यात्मिक मार्गों में समान हैं उस सर्वव्यापी धर्म याने कुदरत के कानून को महत्त्व देना चाहिए। उनकी बातों का बड़े उत्साह के साथ स्वागत किया गया।

उन्होंने कहा, "मित्रो, आध्यात्मिक एवं धार्मिक दुनिया के नेताओ! आज हम सब को मिल कर मानवता की सेवा करने का एक उत्तम अवसर उपलब्ध हुआ है। धर्म एकता लाए तो ही धर्म है अन्यथा यदि फूट डालता हो तो वह धर्म नहीं है।

आज यहां धर्म परिवर्तन के पक्ष और विपक्ष में बहुत चर्चा हुई। मैं परिवर्तन के विरोध में नहीं, बल्कि उसके पक्ष में हूं – परंतु परिवर्तन एक संप्रदाय से दूसरे संप्रदाय में नहीं, बल्कि परिवर्तन दुःख से सुख में, बन्धन से मुक्ति में, क्रूरता से करुणा में होना चाहिए। आज ऐसे ही परिवर्तन की आवश्यकता है और इसी के लिए इस महासभा (सम्मेलन) में प्रयास करना है।

पुरातन भारत ने विश्व की समग्र मानवता को शांति और सामंजस्य का संदेश दिया। पर केवल इतना ही नहीं, बल्कि शांति-सामंजस्य प्राप्त करने का तरीका भी दिया, विधि भी दी। मुझे ऐसा लगता है कि मानव समाज में यदि सचमुच शांति स्थापित करनी है तो हमें हर एक व्यक्ति को महत्त्व देना होगा। यदि प्रत्येक व्यक्ति के मन में शांति नहीं है, तो विश्व में वास्तविक शांति कैसे होगी? यदि मेरा मन व्याकुल है, हमेशा क्रोध, वैर, दुर्भावना और द्वेष से भरा रहता है, तो मैं विश्व को शांति कैसे प्रदान कर सकता हूं? ऐसा कर ही नहीं सकता क्योंकि स्वयं मुझमें शांति नहीं है। इसलिए संतों और प्रबुद्धों ने कहा, "शांति अपने भीतर खोजो"। स्वयं अपने भीतर निरीक्षण करके देखना है कि क्या सचमुच मुझमें शांति है। विश्व के सभी संतों, सत्पुरुषों और मुनियों ने यही सलाह दी – "अपने आप को जानो" माने केवल बुद्धि के स्तर पर नहीं, भावावेश में आकर या श्रद्धा के मारे स्वीकार मत कर लेना, बल्कि जब अपनी अनुभूति के स्तर पर अपने बारे में सच्चाई को जानेंगे, तब जीवन की समस्याओं का स्वतः समाधान होता चला जायगा।

ऐसा होने पर व्यक्ति सर्वव्यापी नियामता को, कुदरत के कानून को या यूं कहें ईश्वर के कानून को समझने लगता है। यह कानून सब पर लागू होता है। जब मैं क्रोध, वैर, दुर्भावना, द्वेष पैदा करता हूं तो उसका सबसे पहला शिकार मैं स्वयं होता हूं। जो वैर या द्वेष भीतर जगाया उसका पहला शिकार मैं होता हूं। मैं पहले अपनी हानि करता हूं और उसके बाद ही औरों की हानि करता हूं। यह कुदरत का कानून है। यदि मैं अपने भीतर निरीक्षण करूं तो देखूंगा कि जैसे ही मन में कोई मैल जागता है, शरीर में उसकी प्रतिक्रिया अनुभूत होने लगती है। शरीर गरम हो जाता है, जलने लगता है, धड़कन बढ़ जाती है, तनाव मालूम होता है। मैं व्याकुल हो जाता हूं। भीतर मैल जगाकर जब मैं व्याकुल होता हूं तो अपनी व्याकुलता केवल अपने तक ही सीमित नहीं रखता, उसे औरों को भी बांटता हूं। अपने आस-पास के वातावरण को इतना तनावपूर्ण बना देता हूं कि जो मेरे संपर्क में आता है वही व्याकुल हो जाता है। मैं चाहे कितनी ही सुख-शांति की बातें करूं, मेरे भीतर क्या हो रहा

है, यह शब्दों से अधिक महत्त्वपूर्ण है। और यदि मेरा मन निर्मल है तो कुदरत का दूसरा कानून अपना काम करने लगता है। जैसे ही मेरा मन निर्मल हुआ कि यह कुदरत या ईश्वर मुझे पुरस्कार देने लगता है। मुझे शांति का अनुभव होता है। इसे मैं अपने भीतर स्वयं देख सकता हूं।

कोई चाहे किसी भी संप्रदाय का, परम्परा का, देश का हो, जब वह कुदरत के नियम को तोड़ कर मन में मैल जगाता है, तो दुःखी होता ही है। कुदरत स्वयं दंड देती है। कुदरत के नियमों को तोड़ने वाला तत्काल नारकीय यातना का अनुभव करता है। इस समय नारकीय दुःख का बीज बो रहे हैं तो मृत्यु के पश्चात भी नारकीय दुःख ही मिलेगा। वैसे ही, यदि मैं अपने मन को शुद्ध रखूं, मैत्री और करुणा से भरूं तो अब भी अपने भीतर स्वर्ग का सुख भोगता हूं और यह बीज मृत्यु के बाद भी स्वर्गीय सुख ही लायेगा। मैं अपने आपको चाहे हिंदू कहूं या मुस्लिम, इसाई, जैन कुछ भी कहूं, कोई फर्क नहीं पड़ता। मनुष्य मनुष्य है और मनुष्य का मानस मनुष्य का मानस है।

अतः परिवर्तन होना ही चाहिये – मन की अशुद्धता का, मन की शुद्धता में। यह परिवर्तन लोगों में आश्चर्यजनक बदलाव लायेगा। यह कोई जादू या चमत्कार नहीं, बल्कि अपने भीतर शरीर और चित्त के पारस्परिक संस्पर्श का प्रभाव है जो एक विशुद्ध विज्ञान है। कोई भी समझ सकता है कि मन किस प्रकार शरीर को प्रभावित करता है और शरीर किस प्रकार मन को प्रभावित करता है। बड़े धीरज के साथ जब इसका निरीक्षण करते जाते हैं तो कुदरत का कानून बहुत स्पष्ट होता जाता है कि जब भी हम चित्त में मैल जगाते हैं, दुःखी होते हैं और जैसे ही चित्त मैल से मुक्त होता है, शांति-सामंजस्य का सुख भोगने लगते हैं। आत्म निरीक्षण की इस विधि का अभ्यास कोई भी कर सकता है।

प्राचीन काल में भगवान बुद्ध द्वारा सिखाई गई यह विद्या विश्व भर में फैली। आज भी विभिन्न वर्गों के, परम्पराओं के, संप्रदायों के लोग आकर इस विद्या को सीखते हैं और वही लाभ प्राप्त करते हैं। वे अपने आप को हिन्दू, बौद्ध, मुसलमान, इसाई कहते रहें, इन नामों से कोई फर्क नहीं पड़ता। मनुष्य मनुष्य है, फर्क इसी बात से होगा कि वे अभ्यास द्वारा वास्तव में धार्मिक बनें, मैत्री और करुणा से परिपूर्ण हो जायँ। उनके कर्म स्वयं अपने लिए भी और अन्य सब के लिए अच्छे हो जायँ। जब कोई व्यक्ति मन में शांति जगाता है तब उसके आस-पास का सारा वातावरण शांति की तरंगों से भर उठता है और जो भी उसके संपर्क में आता है वही शांति अनुभव करता है। यह मानसिक परिवर्तन ही वास्तविक परिवर्तन है, आवश्यकता इसी बात की है। अन्यथा सभी बाह्य परिवर्तन निरर्थक हैं।

मैं विश्व को भारत का एक कल्याणकारी संदेश पढ़ कर सुनाने की अनुमति चाहता हूं। २३०० वर्ष पूर्व पत्थर पर खुदे हुए एक आदर्श शासक सम्राट अशोक के ये शब्द बताते हैं कि शासन कैसे करना है! वह कहता है, "हमें केवल अपने धर्म (संप्रदाय) को सम्मान देकर, दूसरे संप्रदायों की निंदा नहीं करनी चाहिए"। आज इस संदेश का बहुत बड़ा महत्त्व है। दूसरे संप्रदाय की निंदा करके, अपने ही संप्रदाय को सर्वोत्तम सिद्ध करते हुए व्यक्ति मानवता के लिए कठिनाई पैदा करता है। फिर कहता है, "इसके बजाय नाना कारणों से दूसरे संप्रदायों का सम्मान करना चाहिए।" हर संप्रदाय का सार मैत्री, करुणा और सद्भावना है। इस सार को समझते हुए हमें हर धर्म का सम्मान करना चाहिए। छिलके हमेशा भिन्न होते है; तरह तरह के रीति-रिवाज, कर्मकाण्ड, अनुष्ठान और धारणायें होंगी। उन सबको लेकर झगड़ने के बजाय उनके भीतर के सार को महत्त्व देना चाहिए। अशोक के अनुसार; "ऐसा करके हम अपने धर्म को बढ़ावा देते हैं तथा औरों के धर्म की भी सेवा करते हैं। इसके विपरीत व्यवहार द्वारा हम अपने संप्रदाय की भी हानि करते हैं और दूसरों के भी..।"

यह संदेश हम सबको एक गंभीर चेतावनी देता है कि जो कोई व्यक्ति अपने संप्रदाय के प्रति अति श्रद्धा के मारे दूसरे संप्रदायों की निन्दा करते हुए यह सोचता है कि ऐसा करके मैं अपने संप्रदाय की शान बढ़ाऊंगा, वह अपने कृत्यों से अपने ही संप्रदाय की अधिक हानि करता है।

अंत में अशोक सर्वव्यापी नियामता का, धर्म का संदेश प्रस्तुत करता है, "मेल-जोल ही अच्छा है, आपसी झगड़े नहीं। औरों द्वारा घोषित सिद्धांत (शिक्षा) सुनने के लिए सभी तैयार रहें।" अस्वीकार करने और निंदा करने के बजाय, हम हर संप्रदाय (धर्म) के सार को महत्त्व दें तभी समाज में वास्तविक शांति और सामंजस्य स्थापित होगा।

सब का मंगल हो!

मेरी मां

जब मैं शिविरों में सेवा देने के लिए जाती हूं तब मैत्री के दिन कभी-कभी किसी साधक-साधिका को यह पता चल जाता है कि मैं गुरुजी की छोटी बहन हूं। उनमें से कई भावविभोर होकर मेरे पास आते हैं और मेरे स्व. पूज्य माता-पिता के बारे में मुझसे पूछते हैं; विशेषकर उस जननी के बारे में, जिसकी कोख से पूज्य गुरुजी सत्यनारायण जैसे अनमोल रत्न का जन्म हुआ, जिन्होंने विश्व के सभी लोगों को सांसारिक दुःख-विमुक्ति तथा भवविमुक्ति की विद्या सिखाने में अपना पूरा जीवन लगा रखा है।

तब मेरी आंखों के सामने तैरने लगती हैं बचपन की अनेक स्मृतियां, विशेषकर उस ममतामयी मां की, जो अपने परिवार की मान-मर्यादा और प्रतिष्ठा को सुचारुरूप से संभाले हुए घरेलू जिम्मेदारियों का कुशलतापूर्वक पालन करती थी। अवकाश के समय वह कृष्णभक्ति में अथवा गीता, विष्णु सहसनाम, प्रेमसागर इत्यादि धर्मग्रंथों का पाठ करने में लगी रहती थी। उसने अपनी संतान को भी कृष्णभक्ति के लिए प्रोत्साहित किया। पूज्य पिताश्री शिवभक्त थे। नित्य नियमितरूप से शिवजी की पूजा करते और भावविभोर होकर उनके भजन और शिवस्तोत्र गाया करते थे। परिवार का रहन-सहन बहुत सादगीपूर्ण था। पूरा परिवार यानी पितामह श्री विश्वेश्वरलालजी, भुवाजी, ताऊजी-ताईजी; सभी का आचार-विचार, रहन-सहन बहुत सात्विक, सरल और भक्तिभाव से

ओत-प्रोत था। ऐसे श्रेष्ठ परिवार के आदर्श वातावरण में और परम धर्मपरायण माता-पिता की छत्र-छाया में पले हम सभी भाई-बहनों के हृदय में सेवा-भक्ति के बीज बाल्यावस्था में ही पड़ गये थे। पूज्य गुरुजी बचपन से ही छोटों के प्रति ममता और प्यार, बड़ों के प्रति सेवा और आदरभाव रखते थे। अध्यात्म की ओर उनकी अद्भुत रुचि देख कर कई संतों ने और ज्योतिषियों ने कहा था कि यह बालक बड़ा होकर महान योगी बनेगा। पूज्य माताजी इसलिए बहुत सतर्क और चिंतित रहती थी कि कहीं यह बालक घर छोड़ कर न चला जाय। किसी एक ज्योतिषी ने यह भी कह दिया था कि इसकी उम्र केवल १८ वर्ष की है। इस मृत्युयोग से बच गया तो दीर्घायु होगा। माता को इस बात की भी चिंता बनी रहती थी और वह अनेक प्रकार की मनौतियां मनाती रहती थी।

गुरुजी इन बातों को महत्त्व नहीं देते थे। छोटी उम्र से ही विद्या अध्ययन में संलग्न रहते थे। वे अत्यंत कुशाग्र-बुद्धि थे। सातवीं से सीधे नौवीं कक्षा में प्रवेश कर उन्होंने डबल प्रमोशन लिया। फिर भी दसवीं की परीक्षा में पूरे बर्मा में सबसे ऊंचे अंक लेकर उत्तीर्ण हुए। बर्मा के गवर्नर ने इन्हें स्वर्ण पदक से सम्मानित किया।

पूज्य पिताश्री परिवार में सबसे छोटे थे। हमारी दादी-मां का जब देहांत हुआ तब उनकी उम्र बहुत छोटी थी। हमारी भुवा ने उन्हें पाला था। वह विधवा थी। निस्संतान थीं। इसलिए पीहर के परिवार में ही रहती थी। पिताश्री अपनी इस बहन और बड़े भाइयों के प्रति बहुत श्रद्धा और सेवा का भाव रखते थे। संयोग से उनके तीनों अग्रजों में किसी को भी पुत्र संतान नहीं हुई थी। इसलिए दादाजी बहुत चिंतित रहते थे कि जब ये वृद्ध होंगे तो इनकी सेवा कौन करेगा? इनका वंश कैसे चलेगा?

पूज्य माताश्री ने जब दूसरे पुत्र भाई बाबूलाल को जन्म दिया तो माताजी सहित पिताजी ने अपने पहले और सबसे बड़े पुत्र भाई बालकृष्ण को अपने दूसरे अग्रज को गोद में दे दिया। ऐसे ही आगे चल कर अपने तीसरे पुत्र, जो कि वर्तमान में हमारे गुरुजी हैं, को अपने सबसे बड़े भाई को सौंप दिया, जिनके यहां केवल छ लड़कियों का ही जन्म हुआ था। इसी प्रकार कुछ समय बाद अपने चौथे पुत्र गौरीशंकर को अपने तीसरे अग्रज को सौंप दिया। इस प्रकार अपने पिता और अग्रजों को पुत्रहीन होने की चिंता से मुक्त कर दिया।

संयुक्त परिवार के इतिहास में इस प्रकार की उदारता और त्याग भावना का उदाहरण देखने में नहीं आता। पिता की संपत्ति का तो भाइयों के बीच बटवारा होता आया है, लेकिन अपने जिगर के टुकड़ों को भाइयों में बांट देना आसान काम नहीं है। अपनी संतान के प्रति मां की ममता असीम होती है। वह अपनी संतान के लिए जान की भी बाजी लगा देती है। परंतु यह त्यागमयी मां संयुक्त परिवार की सुख-शांति के लिए अपनी कोख से जन्मे प्यारे पुत्रों को एक-एक करके अपनी जेठानियों को देती चली गयी। इसकी तुलना राजा शिवि से करें, जिसके बारे में कथा है कि अपनी शरण में आए पक्षी की जान बचाने के लिए भूखे बाज को अपने शरीर का मांस काट कर दे दिया।

इस त्यागमयी मां की धर्मभावना उजागर करनेवाली एक और घटना जो मैंने सुनी। गुरुजी भाई सत्यनारायण को गोद दे देने के लगभग एक वर्ष बाद हमारी ताईजी ने एक पुत्र (राधेश्याम) को जन्म दिया। गुरुजी को अपने बड़े भाई बाबूलाल के प्रति बेहद स्नेह था। दोनों की उम्र में बहुत कम अंतर था। दोनों जुड़वा भाई जैसे रहते थे। साथ खेलते, कूदते और सदा एक थाली में ही साथ भोजन करते। बाबूलाल से अलग होना गुरुजी को नहीं भाता था। यद्यपि ताऊजी-ताईजी उसे बहुत प्यार करते थे। परंतु भाई बाबूलाल के प्रति बहुत लगाव होने के कारण राधेश्याम के जन्म लेने के बाद एक दिन वह मां के पास आया और आग्रह करने लगा कि अब ताऊजी को पुत्र प्राप्त हो गया है। इसलिए वह अपने मां-बाप के पास वापस आना चाहता है। ममतामयी मां की आखें छलछला आयीं। वात्सल्यभाव उमड़ आया। परंतु साथ-साथ उसके भीतर का धर्मभाव भी जागा। उसने गुरुजी को समझाया कि ताऊजी द्वारकादासजी का स्वास्थ्य बहुत खराब चलता है। (थोड़े समय बाद उनका शरीर शांत भी हो गया।) तुम्हें उनकी और उनके परिवार की सेवा करनी है। अपने कर्तव्य से विमुख नहीं होना है। और गुरुजी ने मां का आदेश शिरोधार्य किया। कोई साधारण मां होती तो इस अवस्था में अपने लाडले होनहार बेटे को अपनी जेठानी से वापस मांग लेती। परंतु यह धर्ममयी मां ऐसा कैसे करती?

माताश्री और पिताश्री दोनों ही विपश्यी साधक थे। बरमा में रहते हुए दोनों ने परम पूज्य गुरुदेव सयाजी ऊ बा खिन से विपश्यना सीखी थी। गुरुजी सत्यनारायण के भारत आने पर उनके प्रथम शिविर में दोनों पुनः सम्मिलित हुए। परिणाम स्वरूप समय पकने पर दोनों ने मांगलिक मृत्यु प्राप्त की।

पूज्य पिताश्री ८० वर्ष की पक्की उम्र में भी नित्य प्रातः भ्रमण के लिए जाया करते और नित्य दीन दुखियों को भोजनदान दिया करते थे। अमावस्या के दिन जब वे भोजन बांट रहे थे, एक घोड़ा-बग्घी (विक्टोरिया) काल के रूप में दौड़ती हुई आयी और टकराकर उन्हें जख्मी कर गयी। उनके पांव की हड्डी टूट गयी। उन्हें चारपाई की शरण लेनी पड़ी। दो सप्ताह के भीतर पूर्ण चेतन अवस्था में अपने ज्येष्ठ पुत्र बालकृष्ण से धर्मकथा सुनते-सुनते उन्होंने अपनी अंतिम सांस छोड़ी। कुछ समय पश्चात वयःप्राप्त माताश्री ने भी सजग सचेत रहते हुए शांतचित्त से अपने प्राण त्यागे।

पूज्य गुरुजी ने अपने माता-पिता की भक्ति, दान, त्याग, सेवा और सब के प्रति करुणा की भावनाओं का दायद प्राप्त किया है। वैसे तो सभी भाई बहनों में त्याग, दान, सेवा, करुणा की भावना है परंतु गुरुजी हर क्षेत्र में हमसे आगे हैं।

मैं अपनी जननी और जनक को असीम श्रद्धा से नतमस्तक प्रणाम करती हूं। विशेषकर उस धर्ममयी जननी को, जिसकी कोख से मेरे अग्रज गुरुजी सत्यनारायण गोयन्का जैसे धर्मरत्न का जन्म हुआ।

धन्य होंय माता-पिता, धन्य होय कुल गोत।
धरमवन्त जनमें जहां, लिए ज्ञान की जोत॥

– इलायचीदेवी अग्रवाल

नव नियुक्तियां

सहायक आचार्य

१. श्री रामनिवास गौतम, दिल्ली
२. श्रीमती आशा अरोरा, नई दिल्ली
३. श्रीमती कल्पना साखरकर, नागपुर
४. श्री महावीर प्रसाद जैन, अमरावती
५. श्री जे. एन. वानखड़े, अकोला
६. श्री जिनेंद्र जैन, मेरठ
7. Mr. John Hing, U.S.A.
8. Mrs. Suzanne Hing, U.S.A.
9. Mr. Robert Victor Strand, U.S.A
10. Mrs. Edith Marie Todd, "

बाल-शिविर शिक्षक

१) श्री मगनलाल दलसानिया, मोटी मरड(गुज.)
२) श्री सी. रजनीकुमार, सूरत
३) श्रीमती रमीला कांतिलाल चौहान, भरुच
४) श्री तृषांत वासनिक, अंकलेश्वर
५) श्री लोचन अपूर्वा, नई दिल्ली
६) श्रीमती शालिनी दतवानी, मुंबई
७) कु. तोरल मोदी, मुंबई
८) श्रीमती मनीषा कमल मेहता, मुंबई
९) श्रीमती ऊषा कैलाश दुबे, मुंबई
१०) श्री भरत परमार, मुंबई
11) Ms. Lyna Som, Cambodia
12) Ms. Yanny Hin, Cambodia
13) Mr. Joshue Uander Berg, Holland
14) Mrs. Minjom Uander Berg, "
15) Mrs. Knopfel Eva, Switzerland
16) Mr. Kornelius Hug, "

दोहे धर्म के

संप्रदाय ना धर्म है, धर्म न बने दिवार।
धर्म सिखाये एकता, धर्म सिखाये प्यार॥

शुद्ध धर्म जागे जहां, होय सभी का श्रेय।
निजहित, परहित, सर्वहित, यही धर्म का ध्येय॥

धर्मवान की जिंदगी, सब के सुख हित होय।
अपना भी होए भला, भला सभी का होय॥

शुद्ध धर्म जग में जगे, दूर होय संताप।
निर्भय हों, निर्वैर हों, सभी होंय निष्पाप॥

दुखियारा संसार है, जन मन बसे विकार।
जन-जन के मन विमल हों, सुखी होय संसार॥

ना कोई दुर्मन रहे, ना ही द्वेषी होय।
जन-जन का कल्याण हो, जन-जन मंगल होय॥

मेसर्स मोतीलाल बनारसीदास
• महालक्ष्मी मंदिर लेन, ८ महालक्ष्मी चैंबर्स, २२ वार्डन रोड, मुंबई-४०००२६.
☎-४९२३५२६, • सनस प्लाजा, शॉप ११-१३, १३०२, सुभाष नगर, पुणे-४११००२.
☎-४८६१९०, • दिल्ली- २९११९८५, • पटना- ६७१४४२, • वाराणसी- ३५२३३१,
• बैंगलोर- २२१५३८९, • चेन्नई- ४९८२३१५, • कलकत्ता-२४३४८७४
की मंगल कामनाओंसहित

दूहा धरम रा

फिर स्यूं जागै जगत मँह, विपस्सना री जोत।
सब रो मंगळ ही सधै, कुळ छांटै ना गोत॥

सुद्ध धरम फिर जगत मँह, पूज्य प्रतिस्टित होय।
जन जन रो होवै भलो, जन जन मंगळ होय॥

क्रोधी त्यागै क्रोध नै, द्रोही त्यागै द्रोह।
जन-मन मँह प्रग्या जगै, दूर हुवै सम्मोह॥

द्रोह छोड मैत्री करै, क्रोध छोड कर प्यार।
सुद्ध धरम ऐसो जगै, सुधरै जग ब्यवहार॥

जो जो द्वेसी धरम रा, द्वेस मुक्त हो ज्याय।
सुद्ध धरम प्रेमी बणै, दुक्ख दूर हो ज्याय॥

जीवन भरज्या धरम स्यूं, निरमळ अर निस्पाप।
मन मैलो होवै नहीं, रवै न दुख संताप॥

मेसर्स गो गो गारमेंट्स
३१ -४२, भांगवाड़ी शॉपिंग आर्केड,
१ला माला, कालबादेवी रोड, मुंबई - ४००००२.
☎ ०२२- २०५०४१४
की मंगल कामनाओं सहित

'विपश्यना विशोधन विन्यास' के लिए प्रकाशक, मुद्रक एवं संपादक: राम प्रताप यादव, धम्मगिरि, इगतपुरी-४२२४०३, दूरभाष : (०२५५३) ८४०८६, ८४०७६.
मुद्रण स्थान : अक्षर चित्र प्रिंटिंग प्रेस, ६९- बी रोड, सातपुर, नाशिक-४२२००७. **बुद्धवर्ष २५४४, पौष पूर्णिमा, ९ जनवरी, २००१**

वार्षिक शुल्क रु. २०/-, विदेश में US $ 10, **आजीवन शुल्क** रु. २५०/-, " US $ 100. **'विपश्यना' रजि. नं. १९१५६/७१.** Regn. No. AR/NSK-46/2000,

Licenced to post without Prepayment of postage Posting day- **Purnima of Every Month,**
Licence number-- AR/NSK-WP/3 **Posted at Igatpuri-422403, Dist. Nashik**

If not deliverd please return to:-
विपश्यना विशोधन विन्यास
धम्मगिरि, इगतपुरी - ४२२४०३
जिला-नाशिक, महाराष्ट्र, भारत
दूरभाष : (०२५५३) ८४०७६
फैक्स : (०२५५३) ८४१७६
Website: www.vri.dhamma.org
E-mail: <dhamma@vsnl.com>